Knowledgeable Research (An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal) **ISSN 2583-6633**
Available Online: http://knowledgeableresearch.com Vol.03, No.4, November, 2024

एकात्म मानववाद के सैद्धांतिक और व्यवहारिक आयाम

डा. गिरीश कुमार सिंह
प्रोफेसर (इतिहास) व प्राचार्य
डीपीबीएस कॉलेज, अनूपशहर , उ.प्र., 203390

****

Abstract: *प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य पं. दीन दयाल उपाध्याय के राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में रहते हुए किये गये कार्यों और विचारों का ऐतिहासिक विश्लेषण करना है। भारतीय राजनीति के चक्र को, राजनीतिक संस्थाओं और संगठनों के अलावा, अराजनीतिक संगठनों ने भी प्रभावित किया है जिसमें राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ अग्रणी है। लाखों लोग हैं, जो "संघ" के अंध समर्थक हैं और दूसरे हजारों लाखों लोग हैं जो "संघ" की कटु निन्दा करते हैं, पर इसके बावजूद भी "संघ" निरन्तर भारतीय राजनीति का प्रमुख केन्द्र बिन्दु रहा है। पं. दीन दयाल जी मूलतः एक सामाजिक कार्यकर्ता थे परन्तु जब यह महसूस किया गया कि संघ का एक राजनीतिक संगठन भी होना चाहिए तब डा. हेडगेवार ने पं. दीनदयाल को राजनीति में भेजने का निश्चय किया। डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने जनसंघ के उदय काल में ही कहा था कि यदि मुझे दो दीनदयाल मिल जायें तो मैं इस सारे भारतीय रंग-मंच का नक्शा बदल दूं। पं. दीन दयाल ने लोकतन्त्र के विषय में लिखा, "लोकतन्त्र लोक कर्त्तव्य के निर्वाह का एक साधन मात्र है। साधन की प्रभाव क्षमता लोकजीवन में राष्ट्र के प्रति एकात्मकता और अपने उत्तदायित्व के ज्ञान तथा अनुशासन पर निर्भर करती है।".*

Keywords: - *राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, आर.एस.एस., पं. दीन दयाल उपाध्याय, एकात्म मानववाद,*

****

पं. दीन दयाल उपाध्याय ने विशुद्ध भारतीय विचारों पर आधारित मानव कल्याण का सम्पूर्ण सिद्धांत एकात्म मानववाद के रूप में नये सिरे से प्रतिपादित करने का कार्य किया।1 उन्होंने भारतीय विचार परम्परा में शंकर के वेदान्त, कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा स्वनिरूपित एकात्म मानववाद की एक नव प्रस्थानत्रयी की स्थापना की।2 एकात्म मानववाद कोई नवीन वाद नहीं था। उपाध्याय जी कहते हैं कि स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुता एक ही तत्व में अन्तर्निहित हैं जिसे आत्मीयता कहते है। जड़वाद के अधिष्ठान पर रचित संघर्ष, स्पर्धा, स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुता की पृष्ठ भूमि पर ही उन्होंने अपने एकात्म मानववाद का विवेचन किया। एकात्मता भारतीय संस्कृति का केन्द्रीय विचार हैं, एकात्म मानववाद का विचार प्रचलित वादों में न्यूनताओं को दूर कर उन्हें परिपूर्ण बनाने के लिए किया गया है। भारतीय जीवन दर्शन की युगानूकल व्याख्या करने का यह एक अभिनव प्रयास था।3 पं. दीन दयाल ने एकात्म मानववाद का तात्विक सार इस प्रकार व्यक्त किया था, "हमारी सम्पूर्ण व्यवस्था का केन्द्र 'मानव' होना चाहिए। "यत पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे", के न्यायानुसार जीव समष्टि का मात्र प्रतिनिधि एवं उसका उपकरण है। भौतिक उपकरण मानव के सुख के साधन हैं, साध्य नहीं। जिस व्यवस्था में भिन्न रुचि लोक का विचार केवल एक औसत मानव अथवा शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा युक्त अनेक ऐषणाओं से प्रेरित, पुरुषार्थ चातुष्टयशील, पूर्ण मानव के स्थान पर एकांगी मानव का ही विचार किया जाये, वह अधूरी है। हमारा आधार एकात्म मानव है जो एकात्म समिष्टयों का एक साथ प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है। एकात्म मानववाद के आधार पर हमें जीवन की सभी व्यवस्थाओंका विकास करना है।4

एकात्म मानववाद एक पूरा जीवन दर्शन है। अर्थात विविध क्षेत्रों में कार्य करते समय इस बात का निरन्तर ध्यान रखना होगा कि हमारे कदम एकात्म मानव दृष्टि से ही आगे बढ़ रहे हैं। उन सभी क्षेत्रों में हमारी नीतियां, कार्यक्रम तथा उपक्रम, मोर्चे, आन्दोलन और सबके यश या अपयश का मूल्यांकन इसी माप दण्ड से करना होगा। एक भूख को शान्त करते समय दूसरी विपरीत भूख का निर्माण न हो इसमें

सावधानी रखनी होगी। वे मानव जीवन को टुकड़ों में न बांटकर एक इकाई मानकर चले थे। इसीलिए आदर्श समाज व्यवस्था का समाधान एकात्म मानववाद में उन्होंने खोजा था। भारतीय जीवन पद्धति के अनुसार व्यक्ति और समष्टि दोनों का समन्वय होना चाहिए। दीन दयाल जी का कहना था कि व्यक्ति की उपासना से हमें मृत्यु को जीतना चाहिए तथा समष्टि की उपासना से हमें अमरत्व प्राप्त करना चाहिए। यही व्यक्ति का अन्तिम लक्ष्य है और इसी से व्यक्ति तथा समाज दोनों को, सच्चा सुख मिल सकता है।

जहां व्यक्ति के व्यक्तित्व रूपी विभिन्न पहलू संगठित नहीं हैं वहां समाज कैसे संगठित हो सकता है? इस संगठित आधार पर ही अपने यहां व्यक्ति से परिवार, समाज, राष्ट्र, मानवता और चराचर सृष्टि का विचार किया गया। इसी का नाम एकात्म मानववाद है।5 इसके तार्किक अनुक्रम के रूप में हम विचार करें तो इस सम्बन्ध में हमें दिखेगा कि इसके कारण अलग-अलग इकाइयों में संघर्ष की तो बात है ही नहीं, वे तो एक दूसरे से निकलने वाले विकासक्रम का ही आविष्कार हैं। ऐसी स्थिति में सभी इकाइयाँ अपने-अपने क्षेत्र में स्वायत्त किन्तु अपने से ऊपर की इकाइयों के साथ एकात्म होते हुए चल रहे हैं। जहाँ तक मानव समाज रचना का प्रश्न है, इसका अन्तिम अनुक्रम यही हो सकता है- व्यक्ति, परिवार इसी में आगे बढ़ते-बढ़ते राष्ट्र का राष्ट्रीय शासन और फिर इसी एकात्म मानववाद के आधार पर विश्वराज्य का आविष्कार होगा। एकात्म मानववाद प्रत्येक राष्ट्र को अपनी-अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुसार विकास करने की स्वतंत्रता देगा। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपने गुण कर्म के अनुसार विकास कर, विकास का सम्पूर्ण फल समाज पुरुष को अर्पित करता है, उसी तरह प्रत्येक राष्ट्र अपने को मानवता का एक अंग समझेगा।

हम सभी मानवता के साथ अपने को एकात्म समझ लें और सम्पूर्ण मानवता की प्रगति के लिए अपने राष्ट्र की जो विशेषतायें होंगी उनका परिपक्व फल मानवता के चरणों में अर्पित करेंगे। इस प्रकार प्रत्येक राष्ट्र स्वायत्त रहते हुए अपना विकास भी करेगा, किन्तु विश्वात्मा का मन में भाव रहने के कारण एक दूसरे का पोषक विश्वराज्य, पं. दीन दयाल जी ने एकात्म मानववाद की रचना की दृष्टि से चरम परिणत होगी।6 इसी भांति वैचारिक क्षेत्र में अद्वैत का साक्षात्कार तर्क शुद्ध परिणति है। आज की परिस्थिति में जो वैचारिक संभ्रम चारों ओर दिखायी दे रहा है, उस कुहासे को दूर करना बहुत ही आवश्यक है। एकात्म मानव के अनुसार व्यक्ति केवल शरीर नहीं है बल्कि भारतीय विचारकों के तारतम्य से व्यक्ति शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय है। इस का कारण यह है कि समष्टि व्यक्तियों से मिलकर बनती हैं, इसीलिए उसमें भी इन तत्वों का किसी न किसी रूप में दर्शन होना ही चाहिए। इसलिए समष्टि के लिए भी देश जन, संस्कृति और चित्ती की अवधारणा एक श्रेष्ठ देन थी। स्थूल रूप में यदि आप कहें तो जैसे व्यक्ति की एक आत्मा है, वैसे ही समाज की भी कोई आत्मा है। उसमें भी कोई चैतन्य भाव है। इस चित्ती का प्रकटीकरण, इसका सम्यक रूप से अनुभव ही किसी समाज को स्वस्थ एवं गतिमान बनाता है। यह चित्ती ही उसका विराट रूप प्रदर्शित करती है, यही समाज को ठीक प्रकार से संचालित कर सकती है। उसके ताप को ठीक प्रकार से नियन्त्रित कर सकती है। समाज को समाज रूप में अपनी स्थिति बनाये रखने को उसे ताकत प्रदान करती है।7

पं. दीन दयाल जी ने कहा कि जैसे आत्मा एक भावात्मक संबोध है, वैसे ही चित्ती भी एक भावात्मक सम्बोध है। उसका आप यदि स्थूल रूप में पकड़ना चाहें, मुट्ठी में बन्द करना चाहे, तो यह कठिन होगा। परन्तु बिना आत्मा के मनुष्य की कल्पना भारतवर्ष में करना चाहे तो यह बहुत ही कठिन होगा। इसी प्रकार समाज की चित्ती का, इस चैतन्य तत्व का, समाज के रूप में रहने की इस नैसर्गिक

इच्छा का अनुभव करना ही संभव होगा। किन्तु उसको पकड़कर किसी एक स्थूल रूप में दिखा पाना कठिन ही था। उनका यह विश्लेषण था कि इस सामाजिक चेतना को, इस चैतन्य को यदि समाज में नहीं बनाए रखा जा सकता, तो समाज अपनी समस्त मूल प्रकृति को ही खो बैठता है।8 अतएव व्यष्टि और समष्टि का नैसर्गिक सम्बन्ध परस्पर सहयोग का है। व्यक्ति की आत्मा और समाज की सामूहिक चेतना का साक्षात्कार ही सच्चा जीवन दर्शन प्रदान करेगा।

पं. दीन दयाल जी से कई बार लोग यह प्रश्न करते थे कि संस्कृति क्या होती है? वह बड़े ही सरल ढंग से इसका उत्तर देते थे कि, "भई देखो, प्रकृति तो बिल्कुल बोधगम्य है। जब मनुष्य को भूख लगती है तो यह उसकी प्रकृति है। परन्तु उसे दूसरे के साथ मिल बांटकर खाना चाहिए। यह इस भूख लगने वाली नैसर्गिक प्रकृति का एक विकास है। मानवीय समाज को स्वस्थ रखने के लिए, इसको ठीक रखने के लिए, यही संस्कृति है। दूसरे से छीनकर खा जाओ, यही विकृति है।9 जैसे व्यक्ति कर्म करता है, कर्मफल भी मिलता है तो उसको यज्ञ करना चाहिए। समाज का हम फिर से भण्डार भरें, फिर से कुछ ऐसा त्याग करें कि समाज के स्रोत सूखे नहीं और समाज समृद्ध बनता रहे। आज की कराधान प्रणाली क्या है ? यह भी उसी यज्ञ का ही रूप है। व्यक्ति ने जो भी धन अर्जित किया, उसका एक अंश यदि उसने समाज को दे दिया, तो उसे आप यज्ञ में दान के रूप में स्वीकार करें। जैसे यज्ञ एक पवित्र कार्य माना जाता है, वैसे ही समाज को अंश प्रदान करना, समाज के स्रोतों को भरते जाना, यह यज्ञ भावना से होना चाहिए। इसलिए कर वंचना भी नहीं होनी चाहिए।10 समाज रचना की व्यवस्था करने वाले इस प्रकार के कीर्तिमान हम बनायें।

एकात्म मानववाद किसी एक विशेष राजनीतिक नारे से नहीं बंधा है। यह विचार तो मानव और मानव समाज की मूल प्रकृति के विश्लेषण पर आधारित है। शायद मनुष्य की चार मोटी विधायें मन, बुद्धि, शरीर और आत्मा 11 भारत में अभी तक सर्वमान्य हैं और जब तक ये चार तत्व सर्वमान्य है तब तक एक सा समग्र चिन्तन जिसमें व्यक्ति माने मन, बुद्धि, शरीर और आत्मा तथा समाज माने देश, जन, संस्कृति और चित्ति, जिसमें व्यष्टि और समष्टि के सम्यक् सम्बन्ध शिक्षा, कर्म, कर्मफल और यश द्वारा परिभाषित है। जिसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चारों पुरूषार्थों का विचार है, एक स्वस्थ समाज रचना हेतु जीवन दर्शन एवं विचार दर्शन के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित है।12 इस एकात्म मानववाद का हम गहराई से अनुशीलन करें तो इसके आलोक में एक अच्छे, स्वस्थ और समतामूलक समाज का निर्माण हो सकता है। विचारशील व्यक्ति को समाज के निर्माण के लिए सतत कार्यरत रहना चाहिए। दरिद्रनारायण, पीड़ित, शोषित और असहाय जनता के लिए उत्तम प्रकार की समाज रचना विकसित करनी चाहिए। असहाय जनता के लिए उत्तम प्रकार की समाज रचना विकसित करनी चाहिए।13 अतः अच्छी, स्वस्थ, सबल, योग्य समाज रचना के लिए एकात्म मानववाद का अनुशीलन और उसका अनुकरण बहुत ही महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ:

1. पं. दीन दयाल उपाध्याय- एकात्म मानववाद, लखनऊ,1998, पृष्ठ- 161
2. तदैव, पृष्ठ- 17
3. पाञ्चजन्य, 24 अगस्त, 1964, पृष्ठ- 9
4. दत्तोपन्त ठेंगड़ी- एकात्म मानववाद: एक अध्ययन, लखनऊ, 1970, पृष्ठ- 34
5. पं0 दीनदयाल उपाध्याय- एकात्म मानववाद, लखनऊ, 1998, पृष्ठ- 120
6. तदैव,पृष्ठ- 121
7. तदैव, पृष्ठ-122
8. तदैव, पृष्ठ- 123

9. तदैव, पृष्ठ- 124
10. पाञ्चजन्य, 2 जनवरी, 1961, पृष्ठ- 3
11. तदैव।
12. तदैव।
13. तदैव।

Corresponding Author: Dr. Girish Kumar Singh
E-mail: gksingh.mbd@gmail.com
Received: 02 November, 2024; Accepted: 27 November, 2024. Available online: 30 November, 2024
Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension)
This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Noncommercial 4.0 International License